उन्होंने कविता लिखी जिसमें वे कहते हैंः-

जिस दिन था मेरा अभिनंदन
सूरदास सिर पीट रहे थे, कालिदास करते थे क्रन्दन।
हुआ एक्स-रे था तुलसी का
मीरा थी अण्डर आपरेशन,
हिन्दी को केंसर होने का-
हुआ उसी दिन कनफरमेशन।
सीधे दिल्ली चले कबीरा लाद गधे पर नौ मन चंदन।।

उनकी एक और कविता दृष्टव्य हैः-

सुनते हैं अजगर-युग है,
तो फिर दास मलूका हूं मैं।।
अब तक संत बन गया होता,
एक चिलम से चूका हूं मैं।।

जिस कविता से बात प्रारंभ की वह इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है।

नागार्जुन बनाम विद्रोही की चर्चा को प्रस्थान बिन्दु मानकर मैं पाठकों को एक वृहत्तर प्रश्न की ओर ले जाना चाहता हूं। यह पहला अवसर नहीं है जब एक कवि की रचना दूसरे कवि की लिखी मान ली गई हो या उस तरह प्रचलित हो गई हो। और ऐसा नहीं कि सिर्फ हिन्दी में ही ऐसे प्रसंग घटित होते थे। कोई दो वर्ष पूर्व स्पैनिश भाषा के महान कवि पाब्लो नेरुदा के नाम से एक लंबी कविता सोशल मीडिया पर प्रसारित हो गई। किसी सजग पाठक का उस पर ध्यान गया। उसने खोज कर बताया कि यह किसी अन्य की रचना है जिसे नेरुदा के नाम से चलाया जा रहा है। दुनिया में और जगहों पर भी इस तरह के प्रसंग घटित होते होंगे। इतिहास में एक दौर वह भी था जब वाचिक परंपरा में किसी कवि की रचना के साथ प्रक्षिप्त अंश जुड़ जाते थे या किसी प्रसिद्ध कवि के नाम से कोई नया कवि अपनी रचना चला देता था। कबीर और मीरा के पदों में कितना उनका स्वयं का लिखा है और कितना दूसरों ने उनके नाम पर जड़ दिया है उस पर आज भी चर्चाएं जारी हैं।

हम जानते हैं कि प्रिंटिंग मशीन के आविष्कार के साथ बड़ी संख्या में किताबों का मुद्रण प्रारंभ हुआ। अब ताड़ पत्र या भोजपत्र पर लिखने की आवश्यकता नहीं थी। साहित्यिक कृति का गेय होना भी अनिवार्य नहीं था। किसी कृति का असली लेखक कौन हैं इस बारे में भ्रम फैलने की गुंजाइश भी कम हो गई। फिर भी कुछ कसर बाकी रहना ही थी। वह इसलिए कि जिस भाषा का प्रसार क्षेत्र विस्तृत हो उसमें कब, कहां, किसने क्या लिखा इसकी समूची जानकारी सामान्य पाठक के पास नहीं हो सकती थी। यदि स्पेन में एक लेखक ने कुछ लिखा और उसे स्पेन प्रवास से लौटे किसी लातिन अमेरिकी चतुर सुजान ने अपने नाम से चला दिया हो, तो ऐसा हो जाना असंभव न था। आज भी तो हम पाते हैं कि कभी किसी फिल्म की कहानी चोरी होने का आरोप लगता है, तो कभी किसी पत्रिका में चोरी की गई कविता या कहानी छपने का विवाद उठता है। साहित्येतर विषयों में शोध कार्य में चोरी के आरोप लगते हैं और नेताओं के भाषणों में ढूंढा जाता है कि उन्होंने कहां से मसाला टीपा है।

> केन्द्र सरकार हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर हर साल करोड़ों रुपए खर्च करती है। विश्व हिन्दी सम्मेलन नाम का एक स्वांग भी तीसरे-चौथे साल रचा जाता है। यदि एक समन्वित नीति बने, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग हो तो हिन्दी की तमाम पुस्तकें तथा स्फुट रचनाएं डिजिटल प्लेटफार्म पर आसानी से लाई जा सकती हैं। अभी बहुत से लेखक अपनी रचनाएं खुद का ब्लॉग बनाकर पोस्ट करते हैं। दिक्कत होती है कि इसमें अधिकतम संख्या में लोगों को कैसे जोड़ा जाए। मेरे परिचित अनेक लेखकों के ब्लॉग होंगे, लेकिन उनको अलग-अलग खोलकर देखना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं होता।

अमेरिका में कोई शोध प्रबंध प्रकाशित होता है और उसकी नकल मारकर भारत में पीएचडी मिल जाती है। इतनी दूर भी क्यों जाएं? भारत में ही एक विश्वविद्यालय के भीतर एक जैसी विषयवस्तु पर पीएचडी दे देते हैं। अगर कहीं पकड़े गए तो फिर जो होगा सो होगा। आज उसकी चिंता क्यों की जाए। मैंने कई हिन्दी लेखकों को दावे करते हुए सुना है कि फलानी फिल्म का प्लॉट उनकी कहानी से चोरी किया गया है। हमारे हिन्दी जगत में यह शिकायत इसलिए उठती है क्योंकि हिन्दी भाषी क्षेत्र अत्यंत वृहद है। लेखकों की संख्या भी कम नहीं है। लगभग हर कस्बे से एकाध लघु पत्रिका प्रकाशित हो रही है। रचनाएं छपती हैं। अधिकतर एक छोटे से दायरे में सीमित रह जाती हैं, लेकिन पत्रिकाओं के संपादकों और साहित्यिक संस्थाओं के बीच विनिमय में रचना एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने की संभावना बनी रहती है। इसी में यह आशंका भी निहित है कि दूरदराज की पत्रिका में छपी कोई रचना पसंद आ जाए तो उसे अपने नाम से स्थानीय पत्र या पत्रिका में छपा लो, किसको पता चलना है। वैसे भी अधिकतर लेखक अपनी रचनाओं को ही पढ़ते हैं। सरसरी निगाह से पत्रिका में अन्य लेखों को देखो तो ध्यान भी नहीं जाता कि इसमें कोई चोरी की रचना भी हो सकती है। ऐसी घटनाएं कम ही होती हैं, लेकिन होती तो हैं।